International Journal of Enhanced Research in Educational Development, ISSN: 2320-8708
Vol. 1 Issue 4, May-June, 2013, pp: (48-53), Available online at: www.erpublications.com

भारत के प्रमुख बुद्धोत्तर शिक्षा – केन्द्र

हृदयेश कुमार मिश्र

डिग्री कालेज दुबौली, गोरखपुर

1. ओदन्तपुरी विश्व–विद्यालयः

वर्धन साम्राज्य के पश्चात् राजनैतिक अस्थिरता के काल में पूर्वी–भारत में गोपाल नामक एक वीर नायक ने एक नवीन राजवंश की स्थापना किया, जिसे इतिहास में ''बंगाल का पालवंश '' कहा जाता है। इस वंश के संस्थापक गोपाल (750–770) ने ''आदन्तपुरी'' नामक नगर को स्थापना कर, इसे अपनी राजधानी बनाया। उसने यहॉ एक विहार अथवा मठ की भी स्थापना किया, जो कालान्तर में शिक्षा–पीठ के रूप में विख्यात हुआ। यह पीठ तिब्बत की सांस्कृतिक–जननी के अभिधान से प्रसिद्धि प्राप्त किया। इस विश्व–विद्यालय की स्थापना का श्रेय–सुकुमार दत्त, वी०जी० गोखले आदि विद्वान गोपाल को देते है। परन्तु राधाकुमुद मुकर्जी आदि विद्वान् यह मानते है कि पाल नरेशों के मगध शक्ति बनने के पूर्व ही यह पीठ अस्तित्व में आ चुका था और पाल नरेशों ने इस सवंर्धित किया।[1]

इस विश्वविद्यालय के संबंध में स्त्रोत अत्यल्प है। विहार में स्थित विभिन्न विद्या केन्द्रों में ओदन्तपुरी की गणना होती है। संभवतः पालवंश के अस्तित्व में आने के पूर्व यह प्रमुख विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था।[2] पालवंशी सम्राट धर्मपाल और उसके उत्तराधिकारी इस विश्वविद्यालय के अधिक विस्तारकरने में एक सुसम्पन्न पुस्तालय स्थापित किया, जिसमें बौद्ध तथा ब्राह्मण साहित्य की बहुमूल्य संग्रहीत थी। यद्यपिइ स विश्वविद्यालय की ख्याति नालंदा और विक्रमशिला के समान न हो सकी, फिर भी यहॉ पर लगभग 1,000 भिक्षु निवास तथा विद्याध्ययन करते थे। प्रायः तिब्बत के विद्यार्थी यहॉ आकर शिक्षा ग्रहण करते थें। तिब्बत का प्रथम विहार इसी के आधार पर सन् 749 ई० में निर्मित हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचार करने में ओदन्तपुरी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अभयंकर गुप्त के समय में यहॉ एक हजार बौद्ध संन्यासी निवास करते थे। यहॉ बुद्ध आविष्कृत ''भैक्षुकी'' लिपि प्रचलित थी।[3] पाल नरेशों ने अपने अनुदानों से ब्राह्मणी और बौद्ध ग्रन्थों से एक समृद्धशाली ग्रन्थालय से विश्वविद्यालय को विकसित किया।

ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय में तिब्बती–भिक्षुओं की संख्या सर्वाधिक थी। इन भिक्षुओं ने यहॉ वर्षो तक अपना अध्ययन ही नहीं किया वरन ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में भी अपने विवरणोंके अवशेष छोड़ गए जिससे इस विश्वविद्यालय के गौरव पर प्रकाश पड़ता है । तिब्बतर इतिवृत्तो से ज्ञात होता है कि इस विहार–विद्यालय से प्रेरित होकर ही तिब्बतियों ने 'सम–ये' नामक महामठ का निर्माण किया, जिसका पूरा नाम ''ब्सम–यसमी–ग्यूरल्हुन–ज्यिस गुब ग्रुव पईत्सुग्लुगकन'' अर्थात् '' सतत् साधना सम्प्राप्ति का ज्ञान–कूट''4।

अपने सहयोगी पण्डित नैन सिंह के साथ वाडेल ने तिब्बत में भ्रमण–अन्वेषणकी अवधि में इस ज्ञान कूट संबंध में विवरण दिया है।[5] ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय की ख्याति प्रसिद्ध विद्वान् दीपंकर श्री ज्ञान, (तिब्बतियॉ न महान अतीश नाम दिया है) तथा मीमांसा और तर्कशास्त्र के अधिकृत विद्वान् प्रभाकर के कारण हुआ। प्रभाकर बंगाल के छत्तरपुर निवासी बंगाली पंडित अभयंकर गुप्त से संबंधित थे।[8] अभयंकर गुप्त गौड़ (बंगाल) के मूल निवासी थे। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अभयंकर तिब्बत की यात्रा किये थे या नहीं? परन्तु तिब्बती कथाओं में उन्हें बडें सम्मान के साथ ''पच्चेन–रिन पुच्चेस'' अर्थात् शासकीय लामा कहा जाता था। अपने प्रारम्भिक आयु में वह मगध पहुॅच कर पॉच महत्वपूर्ण विज्ञानों का अध्ययन प्रारम्भ किया और अल्पकाल में ही एक महान विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि दिन के प्रथम दो घंटों में शास्त्रों का लेखन, तीसरे घंटे में धर्म की व्याख्या एवं दोपहर तक ईश्वराधना, तत्पश्चात् वह शयन को जाते थे। संस्कृत साहित्य के वे अप्रतिम विद्वान् थे और अनेक संस्कृत ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। महाकाल साधना के सात ग्रन्थ, महाकालान्त तथा इसी प्रकार के अन्य ग्रंथों का प्रणयन किया। इसीलिए उन्हें तन्त्र सम्प्रदाय का शलाका–पुरूष कहा गया है। उन्हें आर्य महापंडित के नाम सा जाना जाता था।[9]

2. जगदलपुरः

राजपूत कालीन सत्ता–संघर्षो में बंगाल के पाल वंश के सत्ता का समापन 1150 ई० के लगभग प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि पाल वंशी नरेश रामपाल उत्तरी भारत में अपनी शक्ति प्रसार का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु वह वारेन्द्र (उत्तरी–बंगाल) क्षेत्र तक ही अपने को सीमित रख सका। राजा रामपाल ने गंगा और कार्तोया नदियों के संगम पर 'रामावती' नामक नगर को प्रतिष्ठापना कर इसे अपनी राजधानी बनाया। पालवंश के राजा रामपाल ने इस नगरी में ही एक विशाल विहार का निर्माण कराया, जो एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ । यह विश्वविद्यालय शताधिक वर्षो तक अपने ज्ञान अवदान का प्रसार किया। यद्यपि ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में बंगाल में अनेक शिक्षा केन्द्र – सोमपुरी, देवी कोट और पण्डित विहार प्रमुख थे।[10] परन्तु जगदलपुर की ख्याति अधिक थी।जगदलपुर विश्वविद्यालय से संबंधित विश्वसनीय तथ्यों के अभाव के कारण बिखरे हुए मोतियों को एक सूत्र में संग्रहित कर इस विश्वविद्यालय के संबंध में कतिपय तथ्यों का उद्घाटन पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका मूल कारण यह है कि उत्तर–भारत पर निरन्तर मुस्लिम आक्रमण होते रहे और उन्होंने अपने अभियानों में शिक्षा–केन्द्रो, हिन्दू–मन्दिरों, मठो–बिहारों का अग्नि–विध्वन्सन अपने धार्मिक उन्माद में किया। इसलिए ऐतिहासिक तथ्यों की अनुपलब्धता इस विश्वविद्यालय के संबंध में है।[11]

कतिपय लोक प्रचलित कथाओं–आख्यानों और तिब्बती उपाख्यानों[14] के आधार पर जगदलपुर विश्वविद्यालय की महत्ता पर प्रकाश पड़ता है। प्राचीन उत्तरी बंगाल (आधुनिक बंगालदेश) के ब्रोग्रा जिले में जगदल नामक एक गॉव विद्यमान है। इस गॉव के सन्निकट एक मिट्टी का ऊँचा टीला विद्यमान है, जिसका उत्खनन अद्यावधि नहीं हो पाया है। जब तक इस टीले का पुरातात्विक उत्खनन नहीं हो जाता, तब तक इस विश्वविद्यालय के वास्तुविन्याय, भवन–संरचना, नियोजन एवं स्थापना का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है। तथापि समकालीन उपर्युक्त साक्ष्यों के संदर्भ में इस विश्वविद्यालय का एक चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है।जगदलपुर विश्वविद्यालय अपने महान विद्वानों के कारण देश देशान्तर में प्रसिद्ध रहा है, जिनकी उपलब्धियों का एक अति संक्षिप्त विवरण ध्यातव्य है ।

(1) विभूतिचन्द्र :– जगदलपुर विश्वविद्यालय के आचार्य शाक्य श्री भद्र के यह शिष्य थे। विभूतिचन्द्र द्वि–भाषिक (संस्कृत तथा तिब्बती) विद्वान् थे। तिब्बती स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि वे एक राजकुमार थे और कालान्तर में भिक्षु बन गये। विभूति चन्द्र एक प्रोज्वल विद्वान् थे, जिसके कारण उन्हें महापंडित की उपाधि प्रदान की गयी थी। उन्होंने लगभग 10 महान ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में किया था और पुनः अपने ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद कर डाला था। तिब्बती भाषा के ज्ञाता होने के कारण उन्होंने लगभग 18 ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में, दक्षिणी तिब्बत में स्थित ''दिन री'' नामक स्थान पर बैठकर किया था। तांत्रिक –बौद्ध विद्या के वे महान विद्वान् थे और ''ज्ञान चक्षु–साधना नाम'' से भी सम्बद्ध रहे है। उनकी रचनाएँ विविध प्रकीर्ण–संग्रह नाम से तिब्बत में सुरक्षित है।[12]

(2) **दानशील :–** संस्कृत एवं तिब्बती भाषा का पूर्णज्ञान होने के कारण इन्हें पंडित, महापण्डित, उपाध्याय और आचार्य के विरूद से विभूषित किया गया था। दानशील ने चार ग्रन्थों का संस्कृत में प्रणयन किया था जिसमें एक ग्रन्थ तर्कशास्त्र से संबंधित था। इन्होंने तिब्बती भाषा में लगभग 54 ग्रन्थों का अनुवाद किया था।[13] अनुवाद का यह काय उन्होंने मध्य तिब्बत में स्थित ''यर–क्लूम्स, थान–पोचे'' नामक विहार में किया था। दानशील के रचनाओं ने तिब्बती बौद्ध–धर्म को अत्यधिक प्रभावित किया। अपने गहन ज्ञान के कारण ही वे प्रसिद्ध को प्राप्तकिये और तिब्बती जनों में उनका सम्मान विद्वान् दीपंकर श्रीज्ञान एवं अभयंकर गुप्त के समान किया जाता था।

(3) **शुभंकर गप्त** :– यह एक महान सन्त विद्वान् के रूप में प्रख्यात थे। इनको प्रसिद्धि आध्यात्मिक महानता के कारण थी । ये शाक्य श्रीभद्र के आध्यात्मिक गुरू और निर्देशक थे।[14] उन्होंने संस्कृत भाषा में ''सिद्धैक वीर तंत्रिका'' लिखा जिसका कालान्तर में अनुवाद तिब्बती भाषा में किया गया।

(4) मोक्षकर गुप्त :– वे हेतु–विद्या (तर्क शास्त्र) के विद्वान् थे। उन्होनें संस्कृत भाषा में 'तर्कभाषा' नामक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ मुख्यतः तीन अध्यायो में लिखा गया, जो तर्क के प्रविधियों पर विशेष प्रकाश डालता है। इस ग्रन्थ का भी तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया। इन्हें भी महापंडित की उपाधि प्रदान की गयी थी।[15] इन विद्वानो के अतिरिक्त धर्मकर नामक विद्वान् भी यहां थे जिनका विद्या के क्षेत्र में अवदान रहा है। विक्रमशिला तथा ओदन्तपुरी विश्वविद्यालयों की भॉति इस विश्वविद्यालय का भी अग्नि–विध्वंशन 1203 ई० में मुस्लिम आक्रमण से हुआ। दूरस्थ प्रदेशों और देशों को ज्ञान –प्रकाश देने वाला यह ज्ञान –दीप सदा के लिए बुझ गया।

3. वलभी विश्व–विद्यालय

पराक्रमी गुप्त साम्राज्य के छठवीं शदी ई० के मध्य विघटित होने पर, अनेक लघु राज्यों का अभ्युत्थान हुआ। सूर्य देव के उपासक ''मैत्रेयक'' विरूदधारी वंशकरों ने काम्बे की खाड़ी के पूर्व गुजरात में 'वलभी' नामक स्थान में अपनी राजधानी की प्रतिष्ठापना किया। मैत्रेयक नरेश ब्राह्मणीय–शैव धर्म के प्रति अनुरक्त थे।[16] मैत्रेयक नरेसों (490–777 ई०) के काल में इस विश्वविद्यालय का विकास हुआ। प्राचीन भारतीय शिक्षा केन्द्रों में वल्लभी एक महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र था। मेत्रेयक वंश के नरेशों ने इस नगर को अपने राजधानी के रूप में विकसित किया था। गुजरात–काठियावाड़ समुद्र के निकट स्थित बल्लभी एक व्यस्त अन्तर्राष्ट्रीय पत्तन ही नहीं था, वरन् शिक्षा केन्द्र और व्यापारिक केन्द्र के रूप में तत्कालीन भारत में प्रसिद्ध था।[17] सातवीं शताब्दी ई० तक इसका विकास हो चुका था। इत्सिंग के अनुसार वल्लभी का महत्व नालंदा की ही तरह पश्चिमी भारत में था। चीनी स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि 640 ई० के लगभग यहॉ बिहार विद्यमान थे, जहॉ 6000 भिक्षुओं और श्रमणों के आवास थे।[18]

ह्वेनसांग के समय बल्लभी एक शिक्षा केन्द्र के रूप में उन्नति पर था। यह विश्वविद्यालय, नालंदा एवं विक्रमशिला की भांति पूर्णतया बौद्ध–शिक्षा–केन्द्र न होकर ब्राह्मण–शिक्षा–केन्द्र भी था। इसीलिए दूरस्थ प्रदेशों के छात्र भी यहॉ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। वल्लभी विश्वविद्यालय अपनी धार्मिक निरपेक्षता के लिए विख्यात था, क्योंकि यहॉ भारत के विभिन्न भागों से विद्यार्थी आते थे और वे यहा 2–3 वर्षो तक रहकर विभिन्न विषयों का अध्ययन करते थे।[19] प्राचीन काल में वल्लभी विशेषताः चिकित्सा–विद्या के लिए प्रसिद्ध था।[20] यहॉ सोधल (एक प्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री) की चिकित्सा–साहित्य में पर्याप्त देन है। इनके 'पद निग्रह' नामक चिकित्सा की एक पुस्तक लिखी मिली है, जिसमें दस परिच्छेद हैं, जो चिकित्सा विज्ञान के मुख्य विषयों पर है– जैसे प्रयोग (नियमावली) काय–चिकित्सा (औषधि) शल्प–शलाक्य (चीर–फाड़) मतविद्या (मानसिक रोगों की दवा) बालतंत्र (बच्चों की बीमारी) रसायने (दीर्घायु–विज्ञान) बाजीकरण (कामोदछीपन औषधि) बीजतंत्र और पंचकर्मा–चिकित्सा विधि आदि है।[21]

4.काशी (वाराणसी)

प्राचीनतम काल से विद्या और शिक्षा केन्द्र के रूप में काशी की ख्याति रही है। उपनिषद् युग में काशी एक महत्वपूर्ण शिक्षा–केन्द्र के रूप में विकसित हो चुकी थी। काशी का शासक अजातशत्रु अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। उसके शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूर–दूर देशों से विद्यार्थी काशी आते थे। बुद्ध के युग में भी काशी की महत्ता पूर्ववत् थी। वैदिक दर्शन और शिक्षा में काशी अग्रणीीी। भगवान् बुद्ध ने 'धर्म–चक्र–प्रवर्तन' सारनाथ (काशी) में ही किया था। अशोक ने यहॉ अनेक बौद्ध–बिहारों और मठों का निर्माण कराया था। सातवीं शदी में ह्वेनसांग ने यहॉ के भवनों को देखा था। उसके अनुसार यहॉ अनेक मंजिलों वाले भवन थे, जो अत्यंत आकर्षक और लुभावने थे।[22]

बुद्ध–काल में वाराणसी पूर्वी–भारत का एक प्रसिद्ध शिक्षा–केन्द्र था। इसीलिए भगवान बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं का प्रवर्तन वाराणसी के सारनाथ से प्रारम्भ किया । जातकों से ज्ञात होता है कि बोधिसत्व के आचार्य होने पर उनके 500 विद्यार्थी थे, जो राज्यों से आये हुए क्षत्रिय–ब्राह्म्ण कुमार थे। सारनाथ में 1500 बौद्ध–भिक्षु शिक्षा पाते थे। जातकों से यह भी ज्ञात होता है कि बुद्धकालीन वाराणसी के अनेक शिक्षक, तक्षशिला के विद्यार्थी रह चुके थे।[23]

वाराणसी अपनी विद्या और शिक्षा के लिए पूर्व–परम्परा का निर्वाह करती हुई दिखायी देती है। भविष्य पुराण का कथन है कि वाराणसी ज्ञान और विद्या का एक महान् केन्द्र होगा।[24] चीनी स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि 7 वीं शताब्दी में यहॉ एक विशाल और सुन्दर विद्यालय निर्मित था, जिसमें अध्यापन के लिए विशाल कक्ष बने हुए थे।[25] गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र की बौद्ध पत्नी कुमार देवी के दानपत्रों से ज्ञात हेाता है कि उसने बौद्ध–तीर्थ–यात्रियों तथा बौद्ध–अध्ययन के लिए दान दिया था।[26] प्राचीन भारत में वाराणसी हिन्दू–शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहॉ असंख्य साधु–विद्वान् तथा हजारों व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते थे।मध्य युगीन अभिलेखों से विदित होता है कि हिन्दू विधाएं हमारे विजित् प्रदेशों से भागकर कश्मीर और वाराणसी जैसे सुदूर स्थानों में चली गयीं, जहॉ मेरे हाथ भी नहीं पहुँच सकते।[28] शंकराचार्य ने वाराणसी में अद्वैत–वेदान्त की शिक्षा की आधारशिला रखी। ज्योतिष–विद्या के केन्द्र रूप में वाराणसी का उल्लेख करते हुउ अल्बेरूनी लिखता है कि वाराणसी नगर निवासी ''विजयनंदिन'' नामक टीकाकार ने 'करणतिलक' नामक एक ज्योतिष की पुस्तक की रचना की।

कश्मीरः

कश्मीर जिसे यूनानी लेखक टाल्सी ने 'कस्पेरिया' कहा है। इसका वर्णन वीरपुरूष दत्त के नागार्जुनकोण्ड अभिलेखों में हुआ है। पाणिनि[56] एवं पतंजलि[30] इस नगर से परिचित थे। इसका वर्णन योगिनी तंत्र में भी हुआ है।[31] वृहदसंहित में एक देश के रूप में इसका वर्णन किया गया है।[32] यह पंजाब के उत्तर में स्थित है। यहॉ पर धर्म, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। दिव्यदान में इस रमणीक नगर का उल्लेख किया गया है।[33] अवदान–शतक तथ बोधिसत्वावदान कल्पलता में इसे केवल नागों द्वारा निवसित नगर बताया गया है।[34] सूत्रधरास्तोत्र[35] का प्रणेता कश्मीर निवासी एक बौद्ध भिक्षु था। माध्यन्तिक नामक एक भिक्षु को उसके अएध्यात्मिक गुरू आनन्द ने यहॉ पर धर्म प्रचारक के रूप में भेजा था। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार इस नगर से हीरा (वज्र) प्राप्त होता था। कश्मीर राज्य का विस्तार 7000 मील था और यह चारों ओर ऊँचे पर्वता से परिवृत था।प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शिक्षा–केन्द्रो में कश्मीर शिक्षा–केन्द्र का परिचय समकालीन चीनी स्त्रोतों से होता है।

कान्यकुब्ज (कन्नौज)

इसे गाधिपुर, कुश–स्थल और महोदय भी कहा जाता था। सातवी शताब्दी ई० में जब चीनी यात्री यवान–च्वांग यहॉ आया था, यहॉ की सत्ता हर्षवर्धन के हाथ में थी । यन–च्वांग कान्यकुब्ज में 1000 बौद्ध अधिष्ठान देखे थे। कन्नौज वासी ज्ञान पिपासु थे।[36] वहॉ बौद्ध मत के अनुयायी और विधर्मी समान संख्या में थे।[37]उत्तर भारत में कन्नौज के उत्कर्ष के समय से ही विद्या विकास आरम्भ हो गया था। यह नगरी राजधानी ही नहीं थी, बल्कि विद्या और शिक्षा की केन्द्र स्थली थी। सातवीं–बारहवीं शदी तक इसका अनवरत विकास होता रहा अनेक विषयो के ज्ञाता इस नगर के शोभा बढ़ाते थे जो अपने शिष्यों को विभिन्न विद्यायें पढ़ाते थे। वाण ने ऐसे ही आचार्य कुल में शिक्षा प्राप्त की थी।कन्नौज नरेश हर्ष स्वयं विद्वान् था। विवेच्यकालीन शिक्षा केन्द्र के रूप में हर्ष का विशेष योगदान था, क्योंकि वह स्वयं काव्यकार और नाटककार भी थां काव्यकार के रूप में 3 नाटकों–प्रियदर्शिनी, रत्नावली और नागानन्द तथा अष्ट महाश्रीचैत्य संस्कृत स्तोत्र की रचना की थी। इसके अतिरिक्त वह एक व्याकरण ग्रन्थं का रचयिता माना जाता है, जो मिलता नहीं है। संस्कृत के पद्य संग्रहों में भी हर्ष द्वारा रचित कुछ पद्य रचनायें पायी जाती है। बासखेड़ा अभिलेख में हर्ष के जो हस्ताक्षर है, उससे यह अनुमान प्रत्यक्ष है कि हर्ष चित्रलिपि लिखने में भी कुशल थे। वी०ए० स्मिथ के अनुसार वांसखेड़ा अभिलेख में श्रीहर्ष के जो हस्ताक्षर हैं, वे संभवतः सम्राट के स्व–हस्तलिखित हस्ताक्षरों के आधार पर ही लिपिकार द्वारा उस उत्कीर्ण किये गये थे।

हर्ष का कवि और नाटकों का ग्रन्थकार होने के संबंध में हमें जो प्रमाण मिलते है वे अधिक विश्वसनीय और सारपूर्ण है। तीनों नाटकों की प्रस्तावना में एक स्वर से हर्ष को 'निपुण कवि' कहा गया हैं– श्री हर्षोः निपुणः कविः। बाण ने अनेक स्थलों पर हर्ष की प्रज्ञा और कवित्य शक्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। हर्षचरित के प्रारम्भ के अठारहवें श्लोक में बाणने जिस 'मान्यराजा' के उत्साहपूर्ण गुणों का उल्लेख किया है उससे अभिप्राय श्री हर्ष काव्य और कथागोष्ठी में भाग लिया करते थे और जो अमृत वे नि :सुत करते थे उसके वे स्त्रोत थे।सातवीं शदी के उत्तरार्द्ध (671–695) में इत्सिंग नामक जो चीनी यात्री भारत आया था, उसने भी हर्ष शीलादित्य

की साहित्यिक प्रतिभा का उल्लेख किया है और कहा है कि शीलादित्य ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की कथा को लेकर एक काव्य की रचना की थी और नृत्य तथा वाद्य के साथ उसे मंच पर अभिनीत भी करवाया था।
विद्यानुरागी कन्नौज नरेश पंडितों और विद्वानों का परम आश्रयदाता था। उसने राजकीय भूमि 4 भागों में बांट दी थी, जिनमें एक पंडित विद्वानों को पुरस्कार हेतु थां इससे यह प्रकट होता है कि बौद्धिक–क्षेत्र में काम करने वालों का कन्नौज में काफी सम्मान था। हर्ष को काव्यों के संग्रह का भी बहुत शौक थां इत्सिंग के अनुसार हर्ष ने एक बार श्रेष्ठ काव्यों से भावपूर्ण कविताओं का संग्रह संकलित करवाया था। इस संग्रह में 500 श्लोक जातक माला से थे। हर्ष के राजदरबार की शोभा बढ़ाने वाले 3 उच्चकोटि के कवि और साहित्याकारों कका ही हमें नाम ज्ञात है यद्यपि अनुमान किया जा सकता ह` कि राजाश्रय प्राप्त छोटे–बड़े कई और विद्वान् भी रहे होगे, हर्ष से संबंधित 3 कवितयों के नाम 'सुभासित रत्न भण्डार' के नीचे लिख श्लोक में उद्धृत है–

''अहो प्रभवो वाग्देव्या मन्मातंगदिवाकर :।
श्री हर्षस्याभवत्सभ्यः समो वाणमयूरयोः

अर्थात् सरस्वती का ऐसा प्रभाव है कि नीच जाति का दिवाकर भी बाण के समान हर्ष का सभा सदस्य थां।

हर्षचरित और कादम्बरी बाण के दो प्रमुख ग्रन्थ है। कादम्बरी के अवशिष्ट भाग को बाण के सुयोग्य पुत्र भूषणभट्ट ने पूरा किया। 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' के अलावा वाण की एक अन्य रचना चण्डीशतक भी कही जाती है।

मयूर , हर्ष के दरबार का दूसरा कवि थां। मयूर के सूर्यशतक से ही प्रेरित होकर वाण ने चण्डीशतक की रचना की थी। मयूर की दो रचनायें और बतायी जाती है – 'मयूर –शतक' और 'आर्यमुक्तमाल' वस्तुतः एक ही रचना के दो भिन्न नाम है।

तीसरे कवि मातंग दिवाकर (यह जाति का चाण्डाल था) के संबंध में हमें कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। डा० कीथ के अनुसार इस कवि के कुछ–एक श्लोक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं।[47] संभवताया 'हरिदत्त' नाम के एक अन्य कवि को भी हर्ष का सम्मानप्रद प्रश्रय प्राप्त था। इस युग के संस्कृत के साथ साहित्यिक भाषा के रूप में प्राकृत का भी प्रचलन था और उसका उत्तरोत्तर विकास होता रहा था।

कन्नौज शिक्षा केन्द्र के संबंध में ह्वेनसांग ने लिखा है कि चूँकि विद्या और प्रतिभा का राजा बहुत आदर करता था, जनसाधारण में भी विद्वानों का बहुत मान और आदर था। अधिकारी सभी पंडितों का ख्याल रखते थे, इसलिए लोगों में विद्यार्जन की प्रवृति बढ़ी थी। फलतः जिज्ञासु व्यक्ति श्रम–समय की चिंता न करके विद्या केन्द्रों में सैकड़ो मील से पहुँचते थे। विद्यार्जन में वे भीख मांगकर भी कार्य चलाते थे। गरीब होना उनके चिंता की कोई बात न थी, वे सच्चे ज्ञान की उपलब्धि को सब कुछ समझतें थे। समज में ऐसे ही लोगों का आदर सम्मान था, लेकिन धनी और सम्पन्न लोग जो प्रमाद और आलस्य से पूर्ण थे, समाज में कोई आदर और सम्मान नहीं होता था, उन्हें निम्न समझा जाता था।

चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार बच्चों की प्रारभिक शिक्षा 'सिद्ध–मूचंग' पुस्तक से प्रारम्भ की जाती थी। यह पुस्तक बच्चों को वर्ण परिचय कराती थी। इस पुस्तक के प्रारम्भ में 'सिद्धम्' लिखा होता था, जिसका अर्थ था कि पढ़ने वाले को सिद्धि या सफलता मिले। यह भी विचार किया जाता है कि सिद्धम के साथ 'नमो सर्वज्ञ' भी जुड़ा हुआ था। अतः बौद्ध धर्म की पुस्तकें सिद्धम् कहलाती थी और ब्राह्म्णों की प्रारम्भिक पुस्तकें (प्राइमीयर) 'सिद्धिरस्तु' कहलाती थी। इत्सिंग के अनुसार 6 वर्ष का होने पर बच्चे को 'सिद्धम्' पुस्तक प्रारम्भ करायी जाती थी और उसके अध्ययन में छः महीने लगते थे।

सिद्धम् के बाद भारतीय बच्चों को पंच विद्या के शास्त्रों से विज्ञ कराया जाता था। ये पॉच विद्याएं थी –1 – व्याकरण या शब्द–विद्या, 2– शिल्प–स्थान–विद्या (शिल्प, कला और उद्योग), 3– चिकित्सा–विद्या, 4– हेतु–विद्या (तर्क व न्याय), 5– आध्यात्म विद्या (बौद्ध दर्शन शास्त्र)। प्रत्येक बौद्ध धर्म के आचार्य अथवा पंडित को इन 6 विद्याओं में निपुण होना आवश्यक था।

ब्राह्म्णों के संबंध में ह्वेनसांग ने लिखा है कि वे चार वेदों का अध्ययन–अध्यापन किया करते थे।[92] वेदों को पढ़ाने वाले आचार्य को सम्पूर्ण वेदों के ज्ञान में पारंगत होना आवश्यक था। ब्राह्म्ण आचार्यो के संबंध में ह्वेनसांग लिखता है कि वे विद्यार्थियों को विद्याा की ओर प्रवृत्ति करते हैं और उन्हें उन्नति की ओर बढ़ने की प्ररेणा देते हैं, वे आलसी को जागृत करने और मंदबुद्धि वाले को कुशाग्र बना देते हैं, वे बड़े परिश्रम और धीरज से काम लेते हैं और जब तक विद्यार्थी शास्त्रों में पूर्णता नहीं प्राप्त कर लेता तब तक पढ़ाते ही जाते है। 30 वर्ष का होने पर विद्यार्थी की शिक्षा समाप्त हो जाती है और वे अपने कार्यो में लग जाते हैं।

विद्यार्थी अपने आचार्यो के बहुत कृतज्ञ होते है और जीवन में प्रवेश करने पर प्रथम कार्य 'अपने गुरूओं' को गुरू दक्षिणा देकर आभार प्रकट करना होता है। ह्वेनसांग ने कुछ ऐसे पंडितों और आचार्यो का भी उल्लेख किया है, जो संसार के कोलाहल से दूर एकान्त में तापस–जीवन बिताया करते थे। सांसारिक सुख–लाभ तथ मान–अपमान का उन्हें विचार नहीं रहता थ और उनकी ख्याति लोक व्यापी होती थी। राजा उनकी प्रतिष्ठा करते और दरबार में बुलाने की धृष्टता नहीं करते।

शास्त्रार्थ गोष्ठी :– विवेच्य कालीन कन्नौज, शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। हर्ष ने अपने महायान धर्म पर शास्त्रार्थ करने के लिए एक विद्वानों की गोष्ठी आयोजित किया था। इस गोष्ठी के सफलता के लिए शीघ्र ही राज्य भर में यह सूचना प्रसारित की गयी कि सभी धर्म और सम्प्रदाय वाले कन्नौज में एकत्र हों और ह्वेनसांग द्वारा की गयी धर्म की व्याख्या पर विचार करें। इस तरह की येाजना तैयार करके हर्ष कभी तब ह्वेनसांग और भास्मरवर्मन को अपने साथ लेकर राजमहल से कन्नौज के लिए रवाना हुआ और 90 दिन की यात्रा के बाद वहॉ पहुॅच गया।हर्ष के निर्देशानुसार आयोजित सभा की, कन्नौज में पूरी तैयारियॉ कर ली गयी थी। हर्ष के पहुॅचने से पूर्व सभा–भवन के घास–फूंस से छाये दो बड़े–बड़े भवन तैयार कार लिये गये थे जिनमें एक–एक हजार आदमी बैठ सकते थे। सभा–भवन में बुद्ध की मूर्ति के लिए एक बहुमूल्य सिंहासन रखा दिया गया था।

रेकार्ड्स के अनुसार हर्ष के निर्देशानुसार सभा के लिए गंगा नदी के पश्चिम की तरफ एक विशाल संघाराम बनवाया गया था और उसके पूरब कमें 900 फीट ऊॅची एक भव्य मीनार खड़ी की गयी , जिसके मध्य में हर्ष ने अपने आकार की एक बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित करवा रखी थी। मीनार के दक्षिण ओर बुद्ध की मूर्ति को स्नान कराने के लिए एक बहुमूल्य वेदी भी बना दी गयी थी।वसन्त ऋतु के दूसरे महीने से (फरवरी–मार्च) हर्ष के कन्नौज पहुंचने पर कन्नौज की धर्म सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। राजधानी में पहुॅचने पर स्वयं हर्ष सभा भवन के निकट पश्चिम तरफ वाले घास–फूस के बने एक अस्थायी महल में ठहरें। अस्थायी महल से संघाराम तक गाने–बजाने वालों के लिए भी अनेक सुन्दर मण्डप आदि बनवा दिये गये थे। कन्नौज की सभा में भाग लेने के लिए हर्ष के निर्देशानुसार देश भर से 18–20 राज्यों के राजा अपने यहॉ के प्रमुख श्रमणों व ब्राह्म्णों सहित वहॉ एकत्र हो गये। थे। लाइफ के अनुसार महायान और हीनयान सम्प्रदाय के 30,000 आचार्य, 3000 ब्राह्म्ण और निर्गन्थ और नालंदा के लगभग 1000 आचार्य अपने शिष्यों और अनुचरों समेत सभा में भाग लेने आये थे।

रेकार्ड्स के अनुसार इस सभा के वाद–विवाद में विभिन्न विद्वान् पंड़ितों ने गंभीर विषयों पर पांडित्यपूर्ण तर्क–वितर्क किया, लेकिन प्रमुख वक्ता ह्वेनसांग थे जिन्होंने महायान धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या करके उसकी महानता पर प्रकाश डाला।

कन्नौज की यह महत्ता बाद के काल तक बराबर बनी रही। प्रतिहारों के युग में भी में भी कन्नौज उसी प्रकार शिक्षा का केन्द्र बना रहा। उस समय के लेखक राजशेखर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, काव्य मीमांसा' 'बालरामायण', 'कर्पूर मंजरी' आदि थे। गहड़वालों के युग में भी कन्नौज का यश उसी प्रकार था तथा विभिन्न विषयों में उसका उत्कर्ष हुआ था।

राजा जय चन्द (1994 ई०) के संरक्षण में संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् श्री हर्ष राज्यसभा में विद्यमान् थे। श्री हर्ष ने नैषध चरित और 'खण्डन खण्ड खाद्य' ग्रन्थ लिखे थे। नैषधीय चरितम महाकाव्य से कन्नौज नरेश द्वारा महाकवित का आदर इस रचना के विषय में ज्ञात होता है।

सन्दर्भः

1. आर०के० मुकर्जी, एनसिएन्ट इंडियन एजुकेशन, पृष्ठ 596
2. डा० सरयू प्रसाद चौबे, तत्रैव पृ 132
3. तत्रैव भाग 1 पृ 173
4. बी०जी०गोखले, एंशियन्ट इंडिया, पृ 160, बम्बई 1952
5. एल० ए ० वाडेल, दिबुद्धिज्म आफ तिब्बत, पृ 266–67, कैम्ब्रिज 1958
6. सुकुमार दत्त, बुद्धिस्ट मो० आप इंडिया, पृ 355, लंदन 1962
7. सुकुमारदत्त, तत्रैव पृ 352
8. राधा कुमुद मुकर्जी, तत्रैव पृ 593–94
9. राधा कुमुद मुकर्जी, तत्रैव पृ 591–94
10. आर०सी० मजुमदार–दी स्ट्रेवल फार इम्पायर, भाग–5 पृ 416–17
11. सुकुमार दत्त, बुदिष्ट मान्क्स एण्ड मानेस्टरोज ऑफ इण्डिया, पृ–379 जार्ज एलन एण्ड एलविन लि० 1962
12. टलतेकर – ए हिस्ट्री आफ इम्पारटेंट टाउन्स एण्ड सिटी आफ गुजरात एण्ड काठियावाड़ 39–40
13. अलतेकर, तत्रैव पृष्ठ 126
14. सोमदेव कथा सरित्सागर, प्रथम खण्ड, तरंग 10, लम्बक 10
15. जातक, 150–80 '6तक्कसिलं गत्वा सबबसिप्पाणि उग्गहित्वा वाराणसियं दसापामाक्खो आचारणीयों हुत्धो पंचमाणक सतानि सित्यं 'वाचेति''
16. अल्बेरूनी, ग्यारहवी सदी का भारत, पृ 176
17. ए० एल० श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, पृ 56
18. अबुल फजल, आइने अकबरी, एच० एस० जैरेट द्वारा अनुदित भाग 2, पृ 169
19. दिव्यावदान, पृ 399
20. अवदान शत, पृ 67

21. जीवनी, पृ 69–70, 77,81, 84, 127 तथा 137
22. वाटर्स, तत्रैव, पृ 155
23. वाटर्स, पृ 159–60